Chapter-7

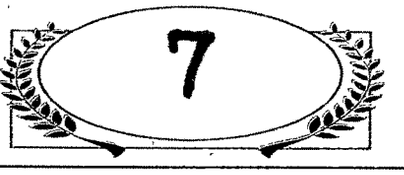

:: सप्तम अध्याय ::

:: उपसंहार ::

A Dhaval PRODUCT A'BAD

सप्तम अध्याय

उपसंहार :--

हमारा यह युग, जिसे आमतौर पर कलियुग कहा गया है, और पुराने रूढ़िग्रस्त परम्परावादी लोग जिसे वितृष्णा की दृष्टि से देखते हैं, पुराने कई मूल्यों के टूटने के कारण जिसकी भर्त्सना करते हैं, वह युग अनेक दृष्टियों से विश्वमानवता के इतिहास में महत्वपूर्ण एवं आवकार्य है। कथासाहित्य तो हमारा प्राचीन भी अत्यंत समृद्ध रहा था, परन्तु वस्तु, शिल्प

एवं प्रकृति की दृष्टि से वह नितांत भिन्न प्रतीत होता था । वह आधुनिक कथासाहित्य के दूसरे छोर पर पड़ता था । प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में आधुनिक कथा-साहित्य, विशेषतः उपन्यास साहित्य, उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गद्य के समीचीन विकास के उपरांत ही आविर्भावित हुआ । उस पर पाश्चात्य उपन्यास-साहित्य, विशेषतः अंग्रेजी उपन्यास साहित्य का सविशेष प्रभाव परिलक्षित होता है ।

इस नये युग के , नये मानव के नवीन भावों और विचारों को उद्भाषित करने वाला यह नया साहित्य-रूप-उपन्यास, एक प्रकार से आधुनिक वायुमण्डल का अग्रदूत कहा जा सकता है, क्योंकि उसकी चिंता के केन्द्र में, कदाचित, प्रथम बार सामान्य मनुष्य, आम मनुष्य, निरंतर जीवन-झंझावातों से जूझने वाला मनुष्य, उत्कट जिजीविषा और जीवट वाला मनुष्य, उपस्थित हुआ है । कदाचित इसीलिए पाश्चात्य औपन्यासिक मनीषी राल्फ महोदय ने इस साहित्य-रूप को मानव-जीवन का गद्य कहा है । मानव-जीवन के समग्र यथार्थ से टकराने वाला यह प्रथम साहित्य-रूप है । सभी साहित्य - विधाओं तथा कलाओं में रूप-निर्मित यथार्थ पर आधृत होती रही है, लेकिन यह यथार्थधर्मिता उपन्यास का तो प्राणतत्व है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इसीलिए कहते हैं कि उपन्यास में दुनिया जैसी है, वैसी चित्रित करने का प्रयास रहता है । मानव-चरित्र की पहचान हमें यहां होती है ।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एक ऐसे साहित्य-रूप का आविर्भूत होना, जिसके केन्द्र में मनुष्य और केवल मनुष्य है, केवल आकस्मिक घटना नहीं है । इसके साथ कई समीरणों का तालमेल अन्तर्निहित है । पश्चिम में "रेनेसां" तथा हमारे यहां "नवजागरण" के आंदोलन द्वारा यह संभव हुआ है ।

जब हमारे यहां ब्रिटिश शासन स्थापित हुआ तब ईसाई धर्म - का प्रचार शुरू किया । उसके लिए उन्होंने हमारे देश के पिछड़े दलित एवं दरिद्र तबके को अपना लक्ष्य बनाया जिनका सहस्त्राधिक वर्षों से धर्म छद्म,

धर्म और शास्त्रों के नाम पर उत्पीड़न होता रहा था । मनुष्य और मनुष्य के बीच वर्ण और जाति की दीवारों को खींचने का उपदेश दुनिया का कोई भी धर्म नहीं देता । परन्तु यह हमारे इतिहास का दुर्भाग्य रहा कि धर्म के नाम पर एक बहुत बड़ा मानव समुदाय और उसकी ऊर्जा उपेक्षित और अवहेलित रहे । पराधीनता के रूप में उसका मूल्य भी हमें चुकाना पड़ा है । अतः जब विदेशी धर्म प्रचारकों ने धर्मान्तरण के लिए हिन्दुओं के उस कमजोर तबके को अपना लक्ष्य बनाया, तब उन्होंने हिन्दू धर्म के उन छिद्रों पर सर्व-प्रथम हाथ रखा जिनके कारण हिन्दू धर्म को विश्व के सामने कलंकित किया जा सकता था । धर्म के नाम पर हमारे यहां जो जघन्य अपराध होते थे, कोई भी समझदार आदमी उसे नकार नहीं सकता था । पति की मृत्यु के बाद किसी जीवित स्त्री को जला देना, बाल-विधवा या युवा विधवा के जीवन को नरकतुल्य बना देना, उसे पैतृक-संपत्ति से बेदखल कर देना, उसे अशिक्षित रखना, लिंग-भेद के आधार पर जीवन के हर क्षेत्र में उसे पुरूष की अनुगामिनी बना देना --दासी बना देना, इन सब को समुचित तो नहीं कहा जा सकता । इस प्रकार देश की आधी आबादी और उसकी ऊर्जा सामाजिक, राजनीतिक उत्तरदायित्वों के विषय में हासिये में डाल दी गई । मृणाल पाण्डेय ने अपनी एक विचारोत्तेजक पुस्तक - परिधि पर स्त्री में इस मुद्दे का विश्लेषण अत्यंत गहनता और गंभीरता के साथ किया है । पुस्तक का शीर्षक ही बहुत कुछ कह जाता है ।

ठीक इसी तरह शूद्र अर्थात दलित जातियों पर भी धर्म और शा - स्त्र द्वारा अनेक प्रकार की नियोग्यताओं (Disabilities) को थोपा गया था । इन नियोग्यताओं में सबसे बडी और सबसे भीषण तथा अमानवीय नियोग्यता थी, अस्पृश्यता की । महात्मा गांधी तथा विवेकानंद महानुभावों ने तो इसे हिन्दू धर्म का कलंक कहा है । इनके अतिरिक्त अनेक प्रकार की धार्मिक नियोग्यताएं, सामाजिक नियोग्यताएं, आर्थिक नियोग्यताएं तथा राजनीतिक नियोग्यताएं थोपी गई थी । इन नियोग्यताओं के रहते

उनका मंदिर-प्रवेश वर्जित था । पवित्र घाटों तथा स्थानों पर वे नहीं जा सकते थे । देवी-देवताओं की पूजाओं से उनको वंचित किया गया था । उन्हें देवभोग अर्थात, प्रसाद ग्रहण करने का अधिकार नहीं था । धार्मिक आख्यानों का श्रवण वे नहीं कर सकते थे । ब्राह्मण उनके यहां पूजा, श्राद्ध, यज्ञ, विवाह-विधि इत्यादि करने नहीं जा सकते थे । हिन्दुओं के सोलह संस्कारों से भी उनको वंचित रखा गया था । सामाजिक संपर्क, सामाजिक वस्तुओं के उपयोग तथा उच्च जातियों द्वारा काम में लायी जाने वाली वस्तुओं के प्रयोग पर प्रतिबंध था । धोबी, नाई, तथा कहार जैसे लोगों की सेवाएं उनको नहीं मिलती थी । उनकी बस्तियां गांव या नगर से बाहर होती थी । रोटी-कपड़ा-मकान जैसी बुनियादी आवश्यकताओं से उनको वंचित किया गया था । भूमि अधिकार तथा धन संग्रह उनके लिए वर्जित था । सोना-चांदी के गहने तथा तांबा-पीतल के बर्तन वे नहीं खरीद सकते थे । अपने परंपरागत पैतृक व्यवसाय को छोड़कर कोई दूसरा व्यवसाय वे अंगीकृत नहीं कर सकते थे । उन पर कोई अत्याचार करे तो उसकी शिकायत करने का अधिकार उन्हें नहीं था । उनके जानोमाल की कोई हिफाजत नहीं थी । दूसरी तरफ साधारण से साधारण अपराध के लिए भी उनको कठोर से कठोर दण्ड दिया जाता था । यह सब हजारों वर्षों से हत्बेमामूल चल रहा था । इनको सहते-सहते दलित जातियों की चेतना कुंद हो गई थी । जिस प्रकार मूक पशु अपने पर होने वाले अत्याचारों को चुपचाप सहता जाता है, उसी प्रकार ये लोग भी पशुवत, जीवन जीते हुए चुपचाप अन्याय और अत्याचारों बर्दास्त कर रहे थे ।

इस प्रकार सामाजिक उत्पीड़न की शिकार जातियों को दलित जातियों के अन्तर्गत रखा जाता है । दलित जातियों में अछूत वर्ग, कर्मिन या शिल्पकार वर्ग, अपराधजीवी या जरायम पेशा वर्ग तथा आदिम जन-जातियों का समावेश होता है । आधुनिक शब्दावली में उनको अनुसूचित - जाति (Scheduled-Caste) तथा अनुसूचित जन-जाति (Scheduled Tribes) कहा जाता है ।

इन जातियों के उत्थान हेतु ज्योतिबा फूले, महात्मा गांधी, डॉ० भीमराव आम्बेडकर कोल्हापुर के साहू जी महाराज तथा बड़ौदा के सर सयाजीराव गायकवाड़ जैसे महानुभावों ने अनेक प्रकार के कार्य किये। स्वाधीनता के उपरान्त पंडित जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती इन्दिरा गांधी, बाबू जगजीवनराम जैसे महानुभावों ने इस वर्ग के उन्नयन के लिए काफी प्रयत्न किये थे। इनके अतिरिक्त के.आर.नारायण, कर्पूरी ठाकुर, भोला पासवान, राम विलास पासवान, सुश्री मीरा कुमार, प्रकाश आंबेडकर, विरप्पन मोईली, पी.ए.सांगमा, कांशीराम, मायावती तथा बूटासिंह जैसे दलित नेताओं ने दलित जातियों को न्याय दिलाने की भरसक चेष्टाएं की हैं। ब्रह्मोसमाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज आदि नवजागरण के धार्मिक, सामाजिक आन्दोलनों से लेकर स्वाधीनता संग्राम के नेताओं तथा स्वाधीनता के उपरांत अन्य अनेक गांधीवादी तथा दलित नेताओं के परिणाम स्वरूप दलित जातियों को अनेक प्रकार के संवैधानिक अधिकार प्राप्त हैं। संसद, धारा सभा, स्थानिक स्वराज्य की संस्थाओं आदि में उनकी आबादी के अनुसार कुछ स्थान उनके लिए आरक्षित हैं। सरकारी संस्थाओं तथा सरकार से अनुदान प्राप्त करने वाली संस्थाओं में नौकरियों में कुछ प्रतिशत स्थान उनके लिए आरक्षित रेख गये हैं। तथापि इनका प्रामाणिकता से अनुसरण नहीं हुआ है, अतः अभी तक जितना लाभ मिलना चाहिए उतना लाभ नहीं मिल पाया है। फिर भी इतना तो कहा जा सकता है कि इस वर्ग में एक नयी चेतना आई है और ये लोग भी अपने मानवीय अधिकारों के प्रति कुछ सचेष्ट हुए हैं।

यह अनेक बार कहा गया है कि उपन्यास इस नये युग की नई विधा है। प्रकृति से ही यह विधा यथार्थधर्मी तथा प्रगतिवादी जीवन-मूल्यों से युक्त है। अतः अपने प्रारंभ काल से ही इस विधा ने पुराने रूढ़ि - ग्रस्त प्रगतिविरोधी जीवन-मूल्यों को ठुकराते हुए प्रगतिवादी शक्तियों तथा विचारों से अपना तालमेल बिठाया है। बल्कि यों कहना चाहिए कि

नवजागरण काल और स्वाधीनता संग्राम काल के तमाम-तमाम प्रगतिशील मुद्दों के एक उचित संवाहक के रूप में इसने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है । यह कहना न होगा कि प्रगतिवादी चेतना शोषणोन्मुखी समाज-व्यवस्था के खिलाफ हमेशा ही मुहिम चलाती रही है और चलाती रहेगी । लेखनी से वह हथियार का काम लेती रही है । हिन्दी का प्रथम उपन्यास ही नारी चेतना तथा नारी शिक्षा को बढ़ावा देने का कार्य करता है । हमारी व्यवस्था में नारियों की स्थिति भी करीब-करीब दलितों जैसी ही रही है । अतः कहा जा सकता है कि हिन्दी की प्रथम प्रगतिवादी मुहिम "भाग्यवती" उपन्यास से प्रारंभित हुई है । दलितोत्थान के संदर्भ में जो कार्य महात्मा गांधी तथा डॉ० भीमराव आम्बेडकर ने किया है, हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में वह कार्य मुन्शी प्रेमचन्द ने संपादित किया है ।

मुन्शी प्रेमचन्द के प्रायः सभी उपन्यासों में दलित लोगों की समस्याओं को किसी न किसी प्रकार उकेरा गया है, तथापि "रंगभूमि", "कर्मभूमि", "प्रेमाश्रम" तथा "गोदान" जैसे उपन्यासों में तो दलितों विशेषतः अछूतों की समस्याओं पर लेखक ने अपना ध्यान सविशेष रूप से केन्द्रित किया है । अतः दलित चेतना सम्पन्न उपन्यासों का प्रारंभ लगभग प्रेमचन्द काल से हो जाता है ।

प्रथम अध्याय में आलोच्य विषय की पृष्ठभूमि को प्रस्तुत किया गया है । द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ अध्याय में क्रमशः प्रेमचन्द काल (1918-1936), प्रेमचन्दोत्तर काल (1937-1946) तथा स्वातंत्र्योत्तर काल (1947-से अद्यावधि) के लगभग उपन्यासों को व्याख्यायित एवं विश्लेषित किया गया है, जिनमें दलित चेतना किसी न किसी रूप में पाई गई है । ये उपन्यास इस प्रकार हैं --- (1) बुधुआ की बेटी (2) कर्मभूमि (3) गोदान (4) रंगभूमि (5) अलका (6) निरूपमा (7) कुल्ली भाट (8) अंतिम आकांक्षा (9) गोली (10) बगुला के पंख (11) उदयास्त (12) कब तक पुकारूं ? (13) सरकार तुम्हारी

आंखों में §14§ जूनिया §15§ देवदासी §16§ गरीब §17§ जमींदार §18§ कभी न कभी §19§ अधूरी नारी §20§ पीले पत्ते §21§ मालिन §22§ मैला आंचल §23§ मंगलोदय §24§ नदी के मोड़ पर § 25§ मोतिया §26§ एक अकेला §27§ नयी बिसात §28§ एक टुकड़ा इतिहास §29§ जल टूटता हुआ §30§ सूखता हुआ तालाब §31§ सागर लहरे और मनुष्य §32§ नाच्यो बहुत गोपाल §33§ रेतीला मोती §34§ पुराण पुरूष § 35§ टपरे वाले §36§ मकान दर मकान §37§ धरती धन न अपना §38§ महाभोज §39§ नाग वल्लरी §40§ चानी §41§ छाको की वापसी §42§ अमीना §43§ नदी का शोर §44§ सबसे बड़ा छल §45§ सोनभद्र §46§ की राधा §46§ सीता - राम नमस्कार §47§ छोटी बहू §48§ एकलव्य आदि हैं ।

इनमें से प्रथम आठ उपन्यास प्रेमचन्दके काल में आते हैं । नव से इक्कीस तक के उपन्यास प्रेमचन्दोत्तर काल के अन्तर्गत और बाइस से अड़तालीस तक के उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर काल के हैं । इनके अतिरिक्त रामकली, गोपूली गफूरन, किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई, चंद औरतों का शहर §शैलेष मटियानी§, आधा गांव, §डॉ० राही मासूम रजा §, बसंती §भीष्म साहनी§, मुर्दा घर, §जगदम्बा प्रसाद दीक्षित§, आग पानी आकाश §रामधारी सिंह दिनकर§, जुलूस §रेणु§, शेखर एक जीवनी §अज्ञेय§, सीधी सच्ची बातें , सबहिं नचावत राम गुसाईं §भगवती चरण वर्मा§, बी §अमृतराय§, परती परिकथा §रेणु§, पत्थर के आंसू, हजार घोड़ों का सवार §यादवेन्द्र शर्मा§, सती मैया का चौरा §भैरव प्रसाद गुप्त§, लोहे के पंख §हिमांशु श्रीवास्तव§, मानव-दानव §मन्मथनाथ गुप्त§, महापात्र §विश्वेश्वर§, यथाप्रस्तावित §गिरिराज - किशोर§, प्रभृति उपन्यासों की चर्चा यथास्थान की गई है ।

§ इनमें से अधिकांश उपन्यासों को केन्द्र में रखते हुए पंचम, तथा षष्ठ अध्याय में दलित-जीवन से सम्बद्ध सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, धार्मिक, नैतिक, शैक्षिक, संस्कारगत, मनोवैज्ञानिक प्रभृति समस्याओं की सोदाहरण व्याख्या प्रस्तुत की गई है। यथा संभव उनका समुचित विश्लेषण एवं मूल्यांकन भी किया गया है। ~~~~ षष्ठ अध्याय के अन्त में दलित वर्ग की आशा - आकांक्षाओं तथा उनकी कमजोरियों को निरूपित किया गया है।§

द्वितीय एवं तृतीय एवं चतुर्थ अध्याय में दलित चेतना से अनुप्राणित जिन उपन्यासों को व्याख्यायित ~~~ एवं विश्लेषित किया गया है, उनके आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रेमचन्दकाल में हमें "बुधुआ की बेटी" §मनुष्यानंद§, "कर्मभूमि", "रंगभूमि", गोदान", कुल्लीभाट, अंतिम-आकांक्षा जैसे उपन्यास मिलते हैं। जिनमें दलित चेतना को रेखांकित किया ~ गया है। इस कालखण्ड के लेखकों की दलित चेतना प्रायः गांधीवादी विचार-धारा से अनुप्रेरित है। उग्र जी के "मनुष्यानंद" तथा प्रेमचन्द जी के "गोदान" में कहीं-कहीं गांधीवादी समाधानों और आस्थाओं का अतिक्रमण भी दृष्टि - गोचर होता है। प्रस्तुत कालखण्ड के लेखकों ने दलित वर्ग के लोगों के साथ होने वाले अन्यायों, अत्याचारों और अमानुषी व्यवहारों को न केवल तलखी के साथ उद्घाटित किया है, अपितु उनके समाधान भी प्रस्तुत किये हैं। इस कालखण्ड के लेखकों में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि वे महात्मा गांधी की भांति अछूतोद्धार की प्रवृत्ति को भी स्वाधीनता संग्राम की एक प्रमुख प्रवृत्ति और मुहिम मानते हैं। इन उपन्यासकारों ने दलित वर्ग से सम्बद्ध सामाजिक, धार्मिक आन्दोलनों को राजनीतिक आन्दोलनों से जोड़ते हुए उन्हें अधिक प्राणवान बनाया और अधिकांशतः यह देखा ~~ गया कि अछूत आन्दोलनों का नेतृत्व उच्चवर्गीय पात्रों को सौंपा गया ताकि पाखंडी पण्डे-पुरोहितों और कूटनीतिज्ञ अंग्रेजों की काली करतूतों का मुंहतोड़ उत्तर दिया जा सके। प्रेमचन्द काल के लेखकों ने दलित वर्ग से संलग्नित सामाजिक, धार्मिक समस्याओं

के अतिरिक्त उनके आर्थिक कमजोर पक्ष पर भी उन्होंने प्रमाणिक दृष्टिपात किया और दृढ़ता के साथ यह संप्रेषित किया कि जब तक दलित वर्ग की आर्थिक दुरावस्था में कोई सुधार न होगा, तब तक अन्य समस्याओं का भी कोई युक्तियुक्त तर्कसंगत समाधान संभव नहीं है ।

तृतीय अध्याय में प्रेमचन्दोत्तर काल के सन् 1946 तक के उपन्यासों को विश्लेषित किया गया है । यहां आचार्य चतुर्सेन शास्त्री के "गोली" उपन्यास में सामंत कालीन परिवेश में दलितों का जो शोषण होता था, उसे रेखांकित किया गया है । जहां उनके "बगुला के पंख" उपन्यास में दलितों के खिलाफ कई पूर्वाग्रह उपलब्ध होते हैं, वहां उनके "ह्रदय उदयास्त" उपन्यास में उनकी परिवर्तित एवं प्रगतिशील दृष्टि का परिचय मिलता है । रांगेय राघव द्वारा प्रणीत उपन्यास "कब तक पुकारूं" में राजस्थान की जरायमपेशा करनट जाति के लोगों के जीवन को उकेरा गया है, तो उग्र जी के "सरकार तुम्हारी आंखों में " उपन्यास में निम्न वर्ग की स्त्रियों के यौन-शोषण को समाकलित किया गया है । "कब तक पुकारूं ? में भी यौन-शोषण की समस्या है । यह समस्या उनके जीवन का एक अंग ही बन गई है । फलतः इसमें उनको कुछ भी अनुचित या अन्यायपूर्ण नहीं लगता है । "जुनिया" उपन्यास दलित उत्पीड़न के कारण होने वाली धर्मान्तरण की प्रक्रिया को उसके यथार्थरूप में चित्रित करता है तो "देवदासी" उपन्यास में धार्मिक वेश्यावृत्ति को उसकी यथार्थ भंगिमा के साथ समेकित किया गया है । इन उपन्यासों के अतिरिक्त "गरीब", "जमींदार", "कभी न कभी", "अधूरी नारी" ,, "पीले पत्ते", "मालिन" प्रभृति उपन्यास भी हैं , जिनमें दलित चेतना के विविध आयामों को उनके यथेष्ट रूप में रखा गया है ।

चतुर्थ अध्याय में स्वातंत्र्योत्तर कालीन दलित चेतना से अनुप्राणित उपन्यासों को व्याख्यायित एवं विश्लेषित किया गया है । यह तथ्य सबका ध्यान आकर्षित करता है कि इस कालखण्ड में ऐसे उपन्यासों की संख्या सबसे ज्यादा है । प्रेमचन्दकाल तथा प्रेमचन्दोत्तर काल (स्वाधीनता पूर्व का) में

दलित जीवन का चित्रण अधिकांशतः अदलित लेखकों द्वारा हुआ है, परन्तु स्वातंत्र्योत्तर काल में अदलित लेखकों के साथ-साथ हमें कुछ दलित लेखकों की भी औपन्यासिक रचनाएं प्राप्त होती हैं । कुछ दलित लेखक छद्मनामों तथा जातियों से भी लिख रहे हैं । यद्यपि हिन्दी में इस प्रकार का लेखन अब बढ़ रहा है तथापि मराठी साहित्य में दलित साहित्य की जो अवधारणा और विभावना बनी है, हिन्दी साहित्य में इस प्रकार की अवधारणाऔर विभावना नहीं बन पाई है । कुछ लेखक इस दिशा में अग्रसरित अवश्य है जिनमें मोहनदास नैमिसराय, ओमप्रकाश बाल्मिक, भगवानदास, चंद्र मोहन प्रधान प्रभृति के नामों को रेखांकित किया जा सकता है । आलोच्य उपन्यासों में जहां एक ओर दलित जीवन की पीड़ा, यंत्रणा और त्रासदी है, वहां दलित जाति के लोगों में से उभरते हुए कुछ नये स्वर भी श्रुतिगोचर होते है । जो भविष्य की दिशाओं को आलोकित करते हैं । आलोच्य उपन्यासों के सूक्ष्म सूक्ष्मान्वेषण से एक तथ्य यह भी उभरकर आया है कि दलित जातियों का शोषण उच्चवर्गीय लोगों ने तो किया ही है, अशिक्षा, असंगठन और मूढ़ता के कारण उनके अपने लोग भी इस पूरी प्रक्रिया में कहीं न कहीं शामिल हैं । दलित वर्ग के लोग जो ऊपर उठ आते हैं उनमें भी कई बार पुरानी सामंतशैली का जीवनदृष्टिगोचर होता है जिनको हम "अभिशाप", "मकान दर मकान" "जूलूस", "नागवल्लरी" प्रभृति उपन्यासों में रेखांकित कर सकते हैं ।

पंचम अध्याय में आलोच्य उपन्यासों को अपनी आधरभूमि बनाते हुए दलित जीवन की सामाजिक, पारिवारिक तथा आर्थिक समस्याओं को समेकित किया है । यहां यह गौरतलब किया गया है कि ये समस्याएं भी परस्पर अनुस्यूत हैं और एक की परछाइयां दूसरे पर पड़ती हैं ही हैं । इन उपन्यासों के अध्ययन से एक ओर तथ्य जो सामने आया वह यह है कि दलित जातियों में भी जातिगत संस्तरण (Hierarchy) पाया जाता है । जिसके कारण विवाह आदि प्रसंगों में नाना प्रकार की समस्याएं पैदा होती हैं । इस वर्ग की जो सामाजिक समस्याएं हैं उनमें हम अस्पृश्यता की समस्या,

दलितों के अपमान, अत्याचार और अन्याय की समस्या, दलित स्त्रियों के यौन-शोषण की समस्या तथा वैवाहिक समस्याओं को रेखांकित कर सकते हैं । यहां यह भी ध्यातव्य रहा है कि दलितों की कहीं-कहीं सवर्ण मानसिकता ने प्रवेश किया है और सवर्ण समाज की बहुत-सी बुराइयां इनमें प्रविष्ट हो रही हैं । उदाहरणतया देख सकते हैं कि वैभव प्रदर्शन की प्रवृत्ति और दहेज की प्रवृत्ति इनमें अब कहीं-कहीं परिलक्षित हो रही है । यहां यह भी देखा गया कि जब कोई दलित वर्ग की स्त्री ऊंची जाति के पुरुष के साथ परिणय-सूत्रों में अनुबद्ध होती है तो उसके उपरांत उसके पति को अनेक प्रकार की सामाजिक, मानसिक यंत्रणाओं से गुजरना पड़ता है । "एक टुकडा इतिहास" इसका ज्वलंत प्रमाण है । ठीक इसके विरीत जब कोई ऊंचे वर्ग की स्त्री दलित व्यक्ति से वैवाहिक-सूत्रों में बंधती है तब उसके सामने अनेक संस्कारगत समस्याएं उपस्थित होती हैं, जिनको हम "नाच्यो बहुत गोपाल", "नाग वल्लरी" तथा "अभिशाप" जैसे उपन्यासों में रेखांकित कर चुके हैं । आलोच्य उपन्यासों के अध्ययन से यह भी फलित हुआ है कि दलितों की इस हीन दीन-हीन नारकीय अवस्था के लिए मुख्यतया उनकी आर्थिक अवदशा कारणभूत है और जहां-जहां भी दलित वर्ग के लोग आर्थिक सम्पन्नता हांसिल करने में कामियाब हुए हैं वहां उनके जीवन के आयामों और समीकरणों में असंदिग्धतया एक बदलाव आया है । यहां यह भी विश्लेषित किया गया कि दलितों की निम्न आर्थिक स्थिति के लिए जहां समाजगत और इतिहासगत कारण है, वहां इसके लिए उनका अज्ञान, अशिक्षा, असंगठितता, मर्यादा विषयक झूठे खयाल आदि भी उत्तरदायी हैं ।

दलित जीवन से सम्बद्ध समस्याओं को दो अध्यायों में अनुबंधित किया गया है । पांचवे अध्याय में, जैसा कि उपर्निदिष्ट किया गया, सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक समस्याओं को समाकलित किया गया तो छठे अध्याय में दलित जीवन से संलग्नित धार्मिक, नैतिक, संस्कारगत एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं को व्याख्यायित करने की चेष्टा की गईहै । "धार्मिक समस्या" यह शब्द कितना हास्यास्पद और विडंबनापूर्ण लगता है, क्योंकि

जहां तक हमारी सामान्य समझ जाती है धर्म की उपादेयता ही समस्याओं के समाधान में है । फिर यह धर्म ही समस्याओं का उद्भावक केन्द्र बने तो उसे बिडम्बना नहीं तो और क्या कहना चाहिए ? इतिहास और अनुभवसाक्ष्य रहा है कि धर्मों का पाठ किस तरह बलता रहा है और किस तरह धर्म सम्प्रदाय विशेष का रूप लेते रहे हैं । धर्म जब बाह्याचारों में सीमित हो जाता है तब वह सड़ने लगता है । आपने पूजा कर ली, मंदिर हो आये, माला जप ली, तीर्थ हो आये, बस आप धार्मिक हो गये । उसके बाद आप कुछ भी करें धर्म से उसे कुछ लेना देना नहीं है । गौर करें तो स्पष्ट होगा कि इस तरह का कर्मकाण्ड अपने आपमें अधार्मिक हो जाता है । विशेषतः जब धर्म सत्ता और राजनीति के शरण में जाता है या राजनीति उसका अपने निजी स्वार्थों के लिए इस्तेमाल करती है, तब धर्म के द्वारा एक विराट सामाजिक प्रदूषण की प्रक्रिया प्रारंभ होती है । वस्तुतः धर्म के इस छद्म रूप के कारण ही अस्पृश्यता, अछूतों के मंदिर-प्रवेश तथा धर्म की राजनीति जैसी समस्याएं अस्तित्व में आती हैं । धर्मान्तरण के मूल में भी दलितों का अत्याधिक अमानवीय उत्पीडन ही उत्तरदायी है जिसे हम "जुनिया," "सीधी सच्ची बातें", "मकान दर मकान", तथा "धरती धन न अपना" जैसे उपन्यासों में रेखांकित कर चुके हैं । धर्म के छद्म रूप के कारण ही ऊंची जातियों में दलित जातियों के प्रति एक भ्रांत और भ्रामक नैतिक अवधारण कायम हुई । दलित जातियों के नीति विषयक दृष्टिकोण में भी इन्हीं अवधारणाओं ने अपना काम किया । दलित जीवन की संस्कारगत समस्याओं का उत्स उनके पीढ़ीगत संस्कारों में है । गंदगी, प्रमाद, अन्धविश्वास जैसी संस्कारगत समस्याओं को हम "नाच्यो बहुत गोपाल", "कब तक पुकारूं?", "एक टुकडा इतिहास", "धरती धन न अपना", प्रभृति उपन्यासों में परिलक्षित कर चुके हैं । शिक्षा के अभाव तथा गलत शिक्षा के अनुसरण के कारण दलित वर्ग में बहुत-सी शैक्षिक समस्याएं पाई जाती है । यहां इस तथ्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि दलितों की बहुत-सी समस्याओं का उत्स उनमें पाई जानेवाली

लघुताग्रंथि में ढूंढ सकते हैं । इतना तो कहा जा सकता है कि युग करवट बदल रहा है और स्वाधीनता के बाद दलित जातियों में भी कुछ चेतना दर्शन होने लगे हैं । इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि स्वाधीनता के उपरांत यह वर्ग अपने मानवीय अधिकारों के लिए कुछ सचेष्ट हुआ है । परन्तु दूर-दराज के गांवों में जागरण का यह प्रकाश अभी भी पूर्णतया पहुंचा नहीं है । प्रस्तुत प्रबंध में यह भी लक्ष्य किया गया कि दलित जातियों में दरिद्रता, प्रमाद तथा पीढ़ीगत संस्कारों के कारण कुछ बुरी आदतें पाई जाती हैं, इन आदतों और कमजोरियों पर उनको काबू पाना होगा, अपनी क्षतियों और दोषों का निवारण करना होगा, सवर्णों के प्रति घृणा का भाव न रखते हुए उनकी अच्छी बातों का अनुसरण करना होगा और उनकी बुरी आदतों से दूर रहना होगा ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि आधुनिक विश्व-साहित्य परिदृश्य के दो महत्वपूर्ण आयाम या विमर्श--नारी-विमर्श या दलित-विमर्श हैं । स्वाधीनता के उपरांत उभय क्षेत्रों में काफी लेखन-कार्य हुआ है । साहित्य के इतिहास के किसी भी कालखंड में जितना नारी लेखन नहीं हुआ होगा, उतना नारी लेखन इधर स्वाधीनता के उपरांत हुआ है । दलित लेखन के प्रमुखतः दो आयाम हैं -- दलितेतर लेखकों द्वारा लिखा गया वह साहित्य जो दलित चेतना से अनुप्राणित है और दलित साहित्यकारों द्वारा दलितों पर लिखा गया साहित्य, जो उनके वैयक्तिक अनुभवों पर आधृत है । हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में ज्ञानाश्रयी निर्गुणधारा का साहित्य अधिकांशतः दलित जाति के भक्त कवियों का साहित्य है । वस्तुतः इसे हम सांस्कृतिक विद्रोह कह सकते हैं । उस समय में ईश्वर की सगुण सत्ता को नकारना एक बहुत बड़ी बात थी । परन्तु इसे हमारे इतिहास का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि जब-जब हमारे यहां क्रान्ति के बीज अंकुर आये हैं सांस्कृतिक या अन्य दीगर कारणों से उनको खत्म करने की कोशिशें लगातार-लगातार होती रही हैं । मराठी साहित्य में दलित साहित्य का यह दूसरा आयाम जितना समृद्ध

और सम्पन्न हुआ है, उतना अभी हिन्दी साहित्य में समृद्ध और संपन्न नहीं हुआ है ।

अतः प्रस्तुत शोध-प्रबंधमें इस प्रकार का कोई आग्रह या दुराग्रह न रखते हुए हमने उन तमाम उपन्यासों को अपने अनुसंधान का लक्ष्य बनाया है, जिनमें दलित-चेतना किसी न किसी रूप में ~~लक्ष~~ उपलब्ध हुई है । इस दिशा में स्वतंत्र रूप से या छिट-पुट रूप से कुछ कार्य हुआ है, परन्तु अभी भी अनेक क्षेत्रों में शोध और अनुसंधान की गुंजाइश है । उपन्यास के अतिरिक्त कहानी, नाटक, कविता, आत्मकथा प्रभृति क्षेत्रों को लेकर शोध-अनुसंधान का कार्य हो सकता है । आधुनिक काल के विविध उपकालखण्डों को लेकर भी ~~xx~~ कार्य हो सकता है । कुछ दलित लेखकों ने जो आत्मकथापरक साहित्य लिखा है-- उदाहरणतया --"अपने अपने पिंजरे", "जूंठन", "मैं भंगी हूं", "-- उनको आधार बनाते हुए, उसके अन्तर्सार्ध्य पर विविध साहित्यरूपों में जो लेखन हुआ है उसका परीक्षण और मूल्यांकन एक दिलचस्प अनुसंधान का विषय हो सकता है ।

अन्त में मेरी प्रार्थना है कि मेरी शक्ति-मति-बुद्धि की भी अपनी सीमाएं हैं । आलोचना-अनुशीलन-अनुसंधान के क्षेत्र में मेरा यह प्रथम कदम है । वस्तुतः पी-एच.डी. उपाधि हेतु किया गया शोधकार्य तो अनुसंधान - भवन की दहलीज के मानिंद होता है । दहलीज के बाद जिस प्रकार भवन के अन्य कक्ष दृश्यमान होते हैं, ठीक उसी प्रकार यहां से अनुसंधान के नये-नये कक्ष अनुसंधित्सु के दृष्टिपथ में आते हैं । मेरी ईश्वरसे प्रार्थना है कि वह मुझे आगे भी इस दिशा में अग्रसरित और आलोकित करता रहे । मेरा यह प्रथम सोपान है । संभव है इसी से कोई राह आग निकल आये । मेरे इस शोधकार्य से मेरे अनुवर्ती अनुसंधित्सु यदि किंचित भी लाभान्वित हो सके तो मैं अपने श्रम एवं अध्यवसाय को सार्थक समझूंगा ।

कोई भी साहित्यिक अध्ययन किसी दृष्टि विशेष को केन्द्र में रखकर किया जाता है और यथार्थ के स्वरूप का आकलन भी अन्ततोगत्वा दृष्टि

सापेक्ष ही रहता है, अतः प्रस्तुत अध्ययन की समूची प्रक्रिया में एक विशिष्ट जीवन-दृष्टि का सूक्ष्म संचालन या दिशानिर्देश परिलक्षित होगा ही । मेरा यह नम्र अभिप्राय है कि निष्ठापूर्वक किया गया कोई भी अध्ययन अनुसंधानकर्ता में भी एक नई दृष्टि को विकसित करता है । अतः इसे अत्युक्ति न समझा जाए कि प्रस्तुत शोधकार्य से मेरी अपनी दृष्टि का भी कुछ विकास हुआ है । जैसे-जैसे मैं इस कार्य में अग्रसरित होता गया, डूबता गया, एक दृष्टि खुलती गई । अतः प्रस्तुत अध्ययन यदि विचार-विमर्श, मानवीय विवेक, शुद्ध वैचारिक सत्वशीलता तथा शोध-अनुसंधान की दिशा में शोधार्थी और अध्येताओं को यदि किंचित मात्र भी आलोक दे पाया तो मैं स्वयं को कृतकृत्य समझूंगा ।

---: इति शुभम् :---